
बिना पैसे
दुनिया का
पैदल सफर
सतीश कुमार




सर्व सेवा संघ
प्रकाशन
राजघाट वाराणसी

प्रकाशक मन्त्री, सर्व सेवा संघ,
राजघाट, वाराणसी
संस्करण प्रथम अप्रैल, १९६ ,०००
द्वितीय अक्तूबर, १९६५ ३,०००
कुल प्रतियाँ ६,०००
मुद्रक ओमप्रकाश कपूर,
ज्ञानमण्डल लिमिटेड,
वाराणसी (बनारस) ६ १० ५२
मूल्य रुपये ५० पैसे

Title BINA PAISE DUNIA KA
PAIDAL SAFAR
Author : Satish Kumar
Subject Peace Travel
Publisher Secretary
Sarva Seva Sangh
Rajghat Varanasi
Edition First April 1965 3 000
Second October 1965 3 000
Total Copies 6 000
Price Rs 3 50

शान्ति के समर्थकों को समर्पित

- हमने युद्ध के विरोध में दुनिया की पैदल यात्रा की।
- हमने शान्ति और मित्रता के लिए विश्व के एक सिरे से दूसरे सिरे तक सफर किया।
- दिल्ली से मास्को और वाशिंगटन तक की आठ हजार मील की पदयात्रा में हमें ऐसे हजारों लोग मिले, जो हृदय से शान्ति चाहते हैं।
- दुनियाभर के श्रमशील मानव एक जैसे हैं और वे युद्ध तथा अणु-अस्त्रों का विरोध करते हैं।
- शान्ति-यात्रा के संस्मरणों की अपनी यह पुस्तक मैं उन्हीं शान्ति के उपासक श्रमजीवियों को समर्पित करता हूँ।

—सतीश कुमार

प्रकाशकीय

सैर कर दुनिया की गाफिल
ज़िन्दगानी फिर कहाँ,
ज़िन्दगी गर कुछ रही
तो नौजवानी फिर कहाँ?

दो नौजवान—सतीश कुमार और प्रभाकर मेनन एक दिन दिल्ली से निकल पड़े दुनिया की सैर के लिए। पर यह सैर सैलानीपन की हविस पूरी करने के लिए नहीं थी, यह थी युद्ध की विभीषिका से त्रस्त जनता को अहिंसा और प्रेम का संदेश सुनाने के लिए और मास्को, पेरिस, लन्दन, वाशिंगटन आदि में बैठे राजनेताओं से निःशस्त्रीकरण की अपील करने के लिए।

और इतना ही नहीं, इस यात्रा की दो खूबियाँ और थीं। यह यात्रा की बिना पैसे की और बिना सवारी की, पैदल, पैदल, पैदल!

कहाँ दिल्ली, कहाँ वाशिंगटन! बापू की समाधि से शुरू हुई यह यात्रा, समाप्त हुई कैनेडी की समाधि पर।

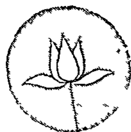
भारत के दो शांति-यात्रियों का बिना पैसे का सारी दुनिया का यह पैदल सफर साहस से तो ओतप्रोत है ही, अपरिग्रह और शाकाहार के मार्ग में आनेवाली बाधाओं से भी भरा पड़ा है। ये यात्री खैबर दर्रे से भी गुजरे, रेगिस्तानों से भी, बर्फीले मैदानों से भी और जंगलों से भी। पेरिस में इन्हें जेल की भी हवा खानी पड़ी है और अमेरिका में इन्हें पिस्तौल का भी सामना करना पड़ा है।

पर, इन सारे अनुभवों की पृष्ठभूमि में सर्वत्र एक बात मिलती है और वह यह कि इन्सान हर जगह इन्सान है। उसके दिल में हर इन्सान के लिए प्रेम है, सहानुभूति है, दर्द है। वह सबके साथ प्रेम से मिल-जुलकर रहना चाहता है। उसे युद्ध नहीं चाहिए, बनर्ट नहीं।

दो सवा दो वर्ष की इस साहसिक पैदल यात्रा के मनोरंजक संस्मरण और खट्टे मीठे अनुभव जो भी पढ़ेगा, मुग्ध हुए बिना न रहेगा।

क्रम

०





भारत से प्रस्थान

नयी दिल्ली में महात्मा ...

पहली जून १०६२ की शाम को नयी दिल्ली में महात्मा समाधि से जब हम पैदल रवाना हुए, तब हमने यह फैसला किया कि हम कदम-बदम चलकर मास्को जायेंगे, पेरिस जायगे, लन्दन जायेंगे और आखिर में वाशिंगटन जाकर अमेरिका के युवा राष्ट्रपति से यह निवेदन करेंगे कि आप आनेवाली पीढ़ी को अणु युद्ध की भट्ठी में भस्म होने से बचाने की कोशिश कीजिये। लेकिन आठ हजार मील की पदयात्रा करके जब हम ६ जनवरी १९६४ को वाशिंगटन पहुँचे, तो हमने देखा कि राष्ट्रपति कनेडी एक हत्यारे की गोली के शिकार हो चुके थे। वे राष्ट्रपति के श्वेत भवन में नहीं, बल्कि श्मशान भूमि में सो रहे थे। हमने इतना कठिन और लम्बी यात्रा के बाद जिनसे मिलने की उम्मीद की थी, वे जब राष्ट्रपति भवन में नहीं मिले, तो हम आगे बढ़े और हमने अपना पदयात्रा केनेडी की समाधि पर जाकर पूरा की। हम बापू की समाधि से चले और केनेडी की समाधि पर पहुँचे। जब बापू ने हिन्दुओं और मुसल... लोगों को मिलकर रहने के लिए कहा, तो एक हिन्दू ने उन्हें गोली से ... उड़ा दिया। जब केनेडी ने काली और गोरी चमड़ी के लोगों को मिलकर

रखने के लिए कहा, तो एक गोरी चमड़ीवाले ने उसे भी गोली से उड़ा दिया। समाज को आगे खींचने के लिए जब जब कोई व्यक्ति प्रयत्न करता है, तब तब समाज की कुछ प्रतिगामी शक्तियाँ उसे रास्ते से हटा देती हैं! फिर भी, क्या वे समाज परिवर्तन की धारा को रोकने में कभी सफल हो सकीं?

अफगानिस्तान के पहाड़ों, ईरान के रेगिस्तानों और रूस के बर्फीले मैदानों में २८ ५ मील चलकर भी जैसी थकान मैंने महसूस नहीं की, वैसी थकान कनेडी की समाधि पर मुझे महसूस हुई। हिंसा की इस शक्ति पर अभी भी हमारा भरोसा क्या कायम है और इसी हिंसा को अभी भी संगठित रूप देने की हम क्या कोशिश कर रहे हैं, यह समझ में नहीं आता! जिसने बन्दूक बनाई, उसे क्या इस बात की कल्पना भी थी कि इस बन्दूक का इस्तेमाल अब्राहम लिंकन, महात्मा गांधी और जॉन कनेडी की छाती पर होगा। काश! बन्दूक को अच्छे और बुरे का विवेक होता! या फिर काश! किसीको बन्दूक बनानी ही न आती।

यात्रा की तैयारी



आखिर किस विचार ने हमें इतना व्यग्र किया कि हम दिल्ली से मास्को और वाशिंगटन की यात्रा पर यों पैदल ही निकल पड़े?

सन् १ ६१ की बात है, जब आणविक अस्त्रों के खिलाफ प्रदर्शन को रोकने के लिए बर्ट्रेण्ड रसेल पकड़कर जेल में रखे गये, तब रसेल ने दुनियाभर के नागरिकों का आह्वान किया कि "आज थोड़े से, लेकिन शक्तिशाली व्यक्तियों के हाथ में मानवता का भविष्य कठपुतली मात्र बन गया है। इसलिए सामान्य-से-सामान्य मानव का यह कर्तव्य है कि वह उठे और इन 'बड़ों' द्वारा किये जा रहे मानव घातक षड्यन्त्र का भण्डाफोड़ करे।" *यह आह्वान जिसने भी पढ़ा या सुना होगा, उसके हृदय के तार एक बार तो अवश्य ही झनझना पड़े होंगे। हमारी भी*

नहीं स्थिति हुई। हमारे मन में भी एक सवाल पैदा हुआ कि 'क्या हम इस समय चुप बैठने का हक है?"

जब अमेरिका के कुछ तरुणों ने सानफ्रांसिस्को से मास्को तक का यात्रा का, अपनी यात्रा पर पचास हजार डालर खर्च करके ससार के लोगों को आणविक हथियारों की घुड़दौड़ पर पाबन्दी लगाने की आवाज उठाने के लिए तैयार हो जाने का कहा, तो दुनियाभर के शान्ति प्रेमियों का मन जोश से भर उठा होगा। वही स्थिति हमारी भी हुई। दिमाग में एक प्रश्न उठा कि "क्या हम भी ऐसा ही कोई प्रयत्न करना चाहिए?"

मैं बनारस में था और मेरे साथी प्रभाकर बैंगलोर में। जब मैं बनारस से त्रिचनीडम आश्रम में रहने के लिए बैंगलोर गया, तो स्टेशन पर ही प्रभाकर मुझे लेने आये। बैंगलोर पहुँचने के बाद हम दोनों गहराई से विचार विमर्श करते रहे। हमने देखा कि हम दोनों के मन में एक ही तरह की चिनगारी जल रही है। वैसे तो पिछले ७ वर्षों से हम दोनों एक-दूसरे के सम्पर्क में रहे हैं, पर इतनी निकटता से साथ रहकर काम करने का अवसर हमें और अधिक निकट ले आया। नवम्बर १९६१ की बात है। बैंगलोर के एक रेस्तराँ में मैं और प्रभाकर कॉफी पी रहे थे। प्रभाकर केरल के हैं। मैं राजस्थान का। दुर्भाग्य से मैं दक्षिण का कोई भाषा नहीं जानता, पर प्रभाकर ऐसी प्यारी हिन्दी बोलते हैं कि कभी-कभी मेरी हिन्दी भी उनके सामने शरमाने लगती है। कॉफी पीते पीते बात निकली—आणविक निःशस्त्रीकरण की। प्रभाकर बोले "लेकिन भारत का योगदान इस आन्दोलन में बहुत कम है।"

मैंने कहा 'इसका एक कारण यह हो सकता है कि भारत किसी सैनिक गुट में नहीं। भारत-सरकार की नीति अणु अस्त्रों के खिलाफ है। इसलिए जनता और राजनैतिक कार्यकर्ताओं का ध्यान इस ओर बहुत कम है।"

प्रभाकर ने फिर कहा "लेकिन हम निःशस्त्रीकरण आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को रखने के लिए कुछ तो करना ही चाहिए। क्या न

हम दिल्ली से मास्को, पेरिस, लन्दन और वाशिंगटन तक की पद यात्रा करें ?"

प्रभाकर के मुँह से अचानक एक साहसभरी बात फूट पड़ी। मन तुरत प्रभाकर की पीठ ठोकी "शाबाश! तुम्हारी बात मेरे मन म तीर का तरह चुभ गया है।"

मेरी बात सुनते ही प्रभाकर का जोश कई गुना बढ़ गया। बोले "पर क्या हम दो ही इसके लिए काफी हैं ?"

मैंने कहा "मेरे मित्र, संख्या पर न जाओ, गुण पर जाओ। अगर हम सच्चे दिल से काम करेंगे, तो १ और १ मिलकर २ नहीं बल्कि ११ जरूर होंगे।"

इसी बातचीत म हमने दो तीन कप कॉफी पी डाली। बात पक्की हो गया।

भाषा की समस्या



मेरे सामने एक समस्या था। म ९ साल की छोटी उम्र म जैन-साधु बना दिया गया था। इसलिए स्कूल म केवल तीन क्लास तक शिक्षा पायी थी। मैंने स्कूल में अंग्रेजी नहीं पढ़ी। साधु बनने के बाद तो मेरी शिक्षा धर्म ग्रन्थों और संस्कृत तक ही सीमित रही। १८ साल की उम्र म म जैन साधु का जीवन छोड़कर सर्वोदय आन्दोलन म विनोबाजी के साथ चला गया। इसलिए अंग्रेजी की शिक्षा मैंने बिल्कुल नहीं पायी। जब मैंने प्रभाकर के साथ यह तय किया कि हम लोग आणविक अस्त्रों की अभी प्रतियोगिता के खिलाफ विश्व की पद-यात्रा करेंगे, तब मेरे सामने सवाल आया—भाषा का। क्या बिना अंग्रेजी के यह यात्रा सम्भव है? मेरे मन का हीन भाव मुझे अन्दर अन्दर खाता रहा। हमारे अंग्रेजी-भक्त नेताओं ने मानसिक दृष्टि से हम कितना कमजोर और गुलाम बना दिया है, इसका अहसास मुझे होने लगा। अंग्रेजी को हमने

ऐसी दशा बना दिया है, मानो यही सब कामों का सिद्ध करनेवाला हो। जो अंग्रेजी नहीं जानते, वे अपने आपको कमजोर, हीन और असहाय महसूस करते हैं।

प्रभाकर ने कहा "भाषा की कतई चिंता मत करो। हम तो केवल ब्रिटेन या अमेरिका नहीं जा रहे हैं। हम तो सबसे पहले फारसी और रूसी भाषी लोगों से मिलना है। चिन्ता केवल अंग्रेजी के लिए नहीं, सभी भाषाओं के लिए करो।" यों मेरा मन आश्वस्त तो हुआ, फिर भी एक खटका बना हुआ था। लेकिन जब हम ७ हजार मील की पद-यात्रा करके, बारह विभिन्न राष्ट्रों को पार करते हुए अमेरिका पहुँच गये, तब अंग्रेजी के प्रति मेरे मन में जो भ्रान्त कल्पनाएँ बनी थीं, वे सब धुल गयीं। मन का खटका मिट गया। सिर पर चढ़ा अंग्रेजी का भूत उतर गया। अंग्रेजी अंतराष्ट्रीय भाषा नहीं है, यह स्पष्ट हो गया।

हमने अफगानिस्तान और ईरान में पाँच महीने तक पद-यात्रा की। इन पाँच महीनों में अंग्रेजी ने कतई साथ नहीं दिया। हमने एकाग्रता पूर्वक कोशिश करके फारसी सीखी और उस टूटी-फूटी फारसी ने ही हमारा काम बनाया। चार महीने तक हम सोवियत-संघ में रहे। वहाँ भी हमने रूसी भाषा सीखी। शुरू शुरू में कुछ कष्ट हुआ। पर जो हमारा खटकता था, वह अंग्रेजी न जानने का नहीं, बल्कि रूसी न जानने का था।

केवल १८-१९ करोड़ लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी है। ब्रिटेन और अमेरिका में भी सब लोगों की मातृभाषा अंग्रेजी नहीं है। हिन्दी भाषी लोगों की संख्या भी इससे कम नहीं। रूस में यदि हमें अंग्रेजी के दुभाषिया मिले तो हिन्दी के भी मिले। मास्को विश्वविद्यालय में मेरे भाषण का अनुवाद करनेवाली बहन की हिन्दी इतनी शुद्ध और धाराप्रवाह थी कि मुझे महसूस नहीं हुआ कि वह हिन्दी भाषी नहीं है। मैंने मास्को विश्वविद्यालय में भाषण देते हुए एक जगह कहा "रूस की जनता 'हमारा' बड़ा सम्मान करती है।" तुरन्त ही दुभाषिया बहन ने मुझे रोकते हुए कहा "हमारा सम्मान? या 'हमारा' सम्मान?" मैं आश्चर्य में पड़ गया। उस

तरुणी की शुद्ध हिन्दी देखकर। उसके मुँह से शुद्ध भारतीय स्वर में मीरा बाई के भजन सुनकर तो मैं चकित ही रह गया। ल्यूदमीला नाम की यह दुभाषिया बहन हमें अपने विदेशी भाषाओं के महाविद्यालय में ले गयी, जहाँ पचासों विद्यार्थी धड़ल्ले से हिन्दी बोलते हैं। इसी तरह पेरिस में हमारे भारतीय राजदूत ने बताया कि वहाँ संस्कृत और हिन्दी का जैसा विद्यापीठ है, वैसे विद्यापीठ भारत में भी कम ही होंगे। जापान में भी टोकियो और ओसाका विश्वविद्यालय में हिन्दी के अध्ययन की विशेष व्यवस्था है। जब कि भारत के एक भी विश्वविद्यालय में जापानी सिखाने के लिए कोई विभाग नहीं है। इसी तरह अन्य देशों में भी हिन्दी का मान बढ़ रहा है, पर हमारे अपने ही देश में अपनी ही भाषा उपेक्षित और अनाथ पड़ी है। जर्मनी और फ्रांस में हम वहाँ की भाषा नहीं जानते थे, इसलिए कभी कभी तो दिनभर हम कोई बात करनेवाला तक नहीं मिलता था। अंग्रेजी के बारे में हमने जो ऊँची ऊँची कल्पनाएँ बाँध रखी थीं, वे सब वास्तविक नहीं हैं।

इसी बीच मैंने फारसी और रूसी की भाँति अंग्रेजी का भी अभ्यास प्रारम्भ किया। हालांकि मैं व्याकरण नहीं जानता, अंग्रेजी में लिखने का भी अभ्यास नहीं, लेकिन अंग्रेजी में बात कर सकता हूँ, भाषण कर सकता हूँ। हम किसी भाषा से नफरत नहीं। हम सभी भाषाओं का सम्मान करें। अधिक से अधिक जितनी भाषाएँ सीख सकें, अवश्य सीखें। परन्तु अपने देश की इन भाषाओं को उपेक्षित करके किसी एक ही भाषा के गुलाम बन जायँ, यह ठीक नहीं। जो भाई अंग्रेजी नहीं जानते, वे अपने में हीन भाव कतई न महसूस करें। यह बात मुझे अपने अनुभव से मिली है। मैं अंग्रेजी नहीं पढ़ा, पर मैं विश्व यात्रा करने में सफल हुआ।

मित्रों का सहयोग



हमें सबसे पहले बर्ट्रेण्ड रसेल का और अमरीका के उन तरुणों का पत्र मिला, जिन्होंने सानफ्रान्सिस्को से मास्को की यात्रा की थी। दोनों ने

तुरत ही हमें उत्तर मिला। रसेल ने लिखा कि "आपके मन में यह बात आयी, यही हमारे लिए बड़ी प्रेरणा की बात है। जरूर योजना बनाइये और आगे बढ़िये।" अमेरिका के तरुणों ने लिखा "स्वागत है आपका! बस, मन को पक्का कीजिये। बिना बड़े-बड़े नेताओं की तरफ ताके अपनी योजना पर अमल कीजिये। सफलता आपके चरण चूमेगी।" साथ ही साथ इन दोनों ने यह भी लिखा कि "हम अपने क्षेत्र में आपकी यात्रा का पूरा प्रबन्ध करेंगे।" बस, हमारा विचार पक्का हो गया।

हमारे देश के नेताओं के आशीर्वाद का सवाल भी सामने था। क्योंकि विदेश यात्रा में अनेक औपचारिक दिक्कतें आती हैं। हमने स्व० प्रधानमंत्री पं० नेहरूजी को लिखा। वे उन दिनों आम चुनाव के कारण बहुत व्यस्त थे। फिर भी उन्होंने हमें तुरन्त उत्तर दिया "इसके परिणाम के बारे में मैं शंकित हूँ, पर आपका आदर्श ऊँचा है। आपका साहस मुझे पसन्द आया। यह काम बहुत जरूरी है।" इसी तरह डॉ० राधाकृष्णन् ने भी बड़ा उत्साहवर्द्धक सन्देश भेजा। शान्ति के काम में लगी हुई विभिन्न संस्थाओं को जब हमने अपनी योजना बतायी, तो सभी संस्थाओं ने हमें पूरा पूरा समर्थन और सहयोग प्रदान किया।

इन सारी तैयारियों के बाद प्रश्न था— आर्थिक संयोजन का। सवा दो वर्ष का लम्बा समय, आठ हजार मील की लम्बी पद-यात्रा, पूरे विश्व की परिक्रमा, इसके लिए कितना धन चाहिए।

इस काम के लिए किसी संस्था से अर्थ याचना करें, यह भी हमें नहीं जँचा। हमने यही निर्णय किया कि कुछ भी हो, इस काम के लिए न किसी संस्था से धन लेंगे, न सरकार से या किसी निधि से कोई मदद माँगेंगे और न कोई चंदा करेंगे। जो मित्र व्यक्तिगत रूप से हमें जानते हैं और मित्रता के नाते हमारी मदद कर सकते हैं, केवल उन्हीं से हम सहायता लेंगे। इस बार मैंने कलकत्ता के अपने मित्रों के सामने इतनी बड़ी यात्रा के लिए होनेवाले भारी खर्च का सवाल रखा। यों व्यापारियों के सामने पैसे का प्रश्न बड़ा कठिन होता है, परन्तु मुझे यह देखकर

आश्चर्य हुआ कि कलकत्ता के मेरे साथी बिना किसी हिचक के इस प्रकार का खर्च उठाने के लिए तैयार हो गये। विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का सवाल जटिल था। भारत सरकार के तत्कालीन वित्त मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने विदेशी मुद्रा देने से इनकार कर दिया। पर कलकत्ते के साथी बोले कि आप कोई चिन्ता न करें। विदेश में ही आपको पैसा मिल जाय और ट्रावलर्स चेक के रूप में आप वह पैसा साथ में रख सकें, ऐसी व्यवस्था हम कर देंगे। मित्रों की तरफ से इतना आश्वासन और भरोसा मिलने के बाद मैं निश्चित तो हो गया था, परन्तु यह बात मन में बराबर खटकती थी कि इतने खर्च का बोझ मित्र मंडली पर कैसे डाला जाय। लेकिन मित्रों का सहयोग स्वीकार करने के अलावा हमारे सामने और कोई चारा भी तो नहीं था!

पत्नी का साहस



मेरा विवाह किये अभी साल भर भी नहीं हुआ था। मैं इतनी लम्बी अवधि के लिए पत्नी से कैसे दूर चला जाऊँ, यह भी बड़ा कठिन प्रश्न था। उन दिनों जब मैं और प्रभाकर विश्व-यात्रा की योजना बना रहे थे मेरी पत्नी प्रसव के लिए पीहर गया हुई थी। ऐसे भावुक और नाजुक समय में जाकर मैं अपनी पत्नी से इस विश्व यात्रा पर निकलने की बात कहूँगा तो उसके मन पर कैसी गुजरेगी, यह सोचते ही मेरा मन कुछ आशंकित हो जाता था। इसलिए दिन पर दिन, सप्ताह पर सप्ताह, यहाँ तक कि महीना भी बीत गया। यात्रा के विभिन्न पहलुओं पर हम विचार विमर्श करते गये, पर इस यात्रा का एक मेरे मन का बड़ा प्रश्न था रहा था कि गर्भिणी पत्नी को इतने लम्बे समय के लिए वियोग में डालकर कैसे जाऊँ? मुझे अपने आप पर कुछ क्रोध भी आ रहा था कि आखिर ऐसे मौके पर ऐसा यातना मैंने बनायी ही क्यों? मेरा क्रोध था पूरी पुरुष-जाति पर। कभी राम और सन्यास के बहाने, कभी साधना और तपस्या के बहाने, कभी

पत्नाद और व्यापार के बहाने पत्नियों का घर पर छोटकर जाने की परम्परा नयी नहीं है। म भी तो ऐसा ही करने जा रहा हूँ। जितनी तड़प मुझे इस विश्व यात्रा पर जाने की थी, उससे कम तड़प पत्नी के साथ रहकर उसका स्नेह पाने के लिए नहीं था। इसलिए मने लम्बा पसोपेश के बाद अपनी पत्नी को दिल थामकर एक पत्र लिखा

"प्रिय लता,

आज का पत्र प्रतिदिन के पत्रों जैसा पत्र नहा है। आज के पत्र म स्नेह उलाहने की बातें नहीं लिखनी हैं। तुम्हें ताज्जुब मे डाल देनेवाली एक विचित्र सी योजना आज लिख रहा हूँ। म जानता हूँ कि यह योजना तुम्हारे मन को चोट पहुँचायेगी। फिर भी उसे लिखने का साहस कर रहा हूँ। जब तक इस योजना पर तुम्हारी मुहर नहा लगेगी, म उस पर कोई निर्णय नहा करूँगा।

योजना यह है कि प्रभाकर और म दिल्ली से मास्को और वाशिंगटन की शांति पद यात्रा करना चाहते हैं। एक तरह से यह विश्व यात्रा ही हो जायगी। इसमें कम से कम दो बरस का समय लगेगा। यदि तुम पूरे मन से राजी होकर आज्ञा दोगी, तभी मैं अन्तिम रूप से तय करूँगा। आज दुनिया में जो शस्त्र प्रतियोगिता चल रही है, उसे खामोश बैठकर देखते रहना मुझसे होता नहीं है। मनुष्य-समाज का एक सदस्य होने के नाते मुझे भी अपनी व्यक्तिगत जिम्मेदारी के रूप म कुछ न कुछ करना चाहिए। भले ही मेरा प्रयत्न 'नक्कारखाने म तूती की आवाज' की भाँति विलीन हो जाय। मेरे मन की तड़प स्पष्ट है, पर तुम्हारे अधिकार को म पहला ध्यान देता हूँ।

पत्र का उत्तर लौटती डाक से देना।

तुम्हारा स्नेहमय
सतीशकुमार"

मेरा पत्र पाते ही लता ने जो उत्तर दिया, वह पढ़कर म आश्चर्य म पड़ गया। लता ने लिखा था

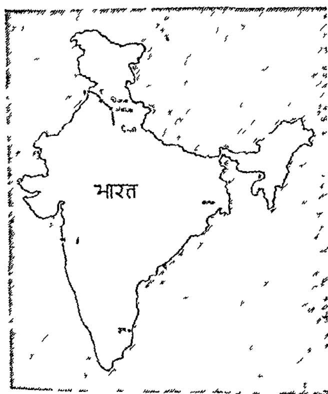
मे अधिक लोगों से मिलना चाहते हैं और दूसरा यह कि यह अधिक आसान तथा सस्ता रास्ता है।"

इस प्रकार रास्ते की जानकारी, यात्रा का ... तक का तैयारी, मिशन इत्यादि के सम्बन्ध में थोड़ी चर्चा करने के बाद विनोबा ने पूछा कि "कल तक तो साथ रहोगे न?" हमारे "हाँ" कहने पर बोले "अच्छा, कल यात्रा में चलते समय बात करेंगे। उस दिन प्रार्थना प्रवचन में विनोबा ने हमारे लिए अत्यधिक प्रेरणादायक प्रवचन किया। 'दो जवान हमारे सामने बैठे हैं' इस वाक्य से उन्होंने प्रारम्भ किया और फिर निःशस्त्रीकरण, अणु अस्त्रों का निर्माण और उनका प्रयोग, युद्ध की तैयारियाँ आदि के सम्बन्ध में करीब एक घण्टे तक वे बोलते रहे।

आसाम हिन्दुस्तान का एक किनारा है। पहाड़ों, नदियों एवं सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों से भरा हुआ वातावरण सृष्टि के चिर सौन्दर्य की अनुभूति कराता रहता है। ऐसे शस्य श्यामल प्रदेश में विनोबा की यात्रा ने नये प्राणों का संचार कर दिया था। गाँवों में रहकर गाँव का सा जीवन जीकर विनोबा जिस तरह काम कर रहे हैं, वह सम्पूर्ण देश के लिए और विशेष रूप से राजनैतिक दाँव पेचों में व्यस्त रहनेवाले तथाकथित नेताओं के लिए अद्भुत प्रेरणादायी है। एक व्यक्ति जिसे उम्र से शरीर से, हर दृष्टि से आराम की जरूरत है, तरह-तरह के कष्टों का सामना करते हुए वास्तविक काम कर रहा है। यात्रा में चलते समय, प्रवचन करते समय कभी भी वर्षा आकर तर बतर कर जाती है। गाँवों के मकान टपकते रहते हैं, पर विनोबा कहते हैं कि "ग्राम स्वराज्य की प्राप्ति तक मैं इसी तरह सतत चलता रहूँगा।" पूरे देश में केवल एक विनोबा ही हैं, जो आज ६२ साल से रोज सवेरे ३ बजे उठता है और लालटेन के मद्धिम प्रकाश में अगले पड़ाव के लिए चल पड़ता है।

यह है हमारी प्रेरणा का दीपस्तम्भ, जो हम जवानों को सक्रिय प्रेरणा दे रहा है। आज देश के अधिकांश लोग सामाजिक कामों से मुँह मोड़कर

नौकरी, बच्चे, खाना पीना सोना, इतने में ही बँध गये हैं। आज 'पुत्र भार्या-पोषण' तक ही कर्तव्य की इतिश्री मान ली जाती है। इन सीमित दायरों के इर्द गिर्द ही हम सब घूमते रह जाते हैं। ऐसे वातावरण में हमारी शांति-यात्रा के लिए विनोबा का आशीर्वाद और उनका सक्रिय



प्रेरणा हमें उठने, चलने और 'कुछ' करने की स्फूर्ति दे रहा था। विनोबा से मिलने के बाद हमें लगा कि जब उन जैसा व्यक्ति इतने सालों से लगातार घूम सकता है, तो हमारे जैसे तरुणों के लिए दो साल का पद

यात्रा में कौन सी कठिनाई है ? हमने पदयात्रा में विनोबा के साथ चलते समय विस्तार से बातें कीं, तो उन्होंने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये

"रास्ते में पानी तो साथ रखोगे ही ?" विनोबा ने पूछा।

"जी।"

"पानी सदा गरम पीने की कोशिश करना। गरम पानी स्वास्थ्य के लिए ठीक रहेगा, हल्का और सुपाच्य रहेगा तथा नाना प्रकार के पानी से जो परेशानी हो सकती है, वह नहीं होगी।"

"हम कोशिश करेंगे।"—हमने कहा।

"आहार के सम्बन्ध में क्या सोचा है ?"—विनोबा ने पूछा।

"आप जानते ही हैं कि हम दोनों ही शाकाहारी हैं। अब आप ही सुझाइये।"—हमारा प्रतिप्रश्न था।

"हाँ, यह ठीक है। शान्ति की ओर अहिंसा की तुम्हारा जो 'मिशन' है, उसके लिए शाकाहार पूर्णतः सहायक है। पर इसमें तुम्हें कुछ खासी दिक्कतों का सामना करना होगा। यदि तुम लोग इस समस्या से पार पा गये, तो तुम्हारे 'मिशन' को बड़ी मदद मिलेगी।"

विनोबा के इस उत्तर पर हमने कहा "हम भी ऐसा ही सोचते हैं और हमें भरोसा है कि हम इस दिशा में आपकी सलाह के अनुसार चल सकेंगे।"

बिना पैसे की यात्रा

"कितने पैसे साथ लेकर जा रहे हो ?"—विनोबा ने पूछा।

"हम तो जनता के भरोसे जा रहे हैं। जनता के साथ काम करना है। लोग हमें ठहरायेंगे, खिलायेंगे, हर तरह की मदद करेंगे। फिर भी डाक, वस्त्र और अनिवार्य जरूरतें पूरी करने के लिए थोड़ा-सा पैसा हम साथ लेंगे।"

"नहीं।"—विनोबा ने हमारी इस बात पर कहा "या तो तुम पूरे खर्च का प्रबन्ध साथ रखो या बिल्कुल पैसा न ले जाओ।" थोड़ी दूर

चुप रहकर फिर बोले "यदि तुम्हारे साथ पैसा नहीं रहेगा, तो जनता स्वयं तुम्हारी मदद करेगी। इतनी लम्बी यात्रा पर जा रहे हो। देश दुनिया भर में तुम्हारी रक्षा के लिए मैं तुम्हें एक चक्र देता हूँ। चक्र यही कि अपनी जेब में एक पैसा भी लेकर मत जाओ। इसके साथ ही गांधी हार रूपी गदा तुम्हारे पास है ही। यह गदा और चक्र तुम्हें सफलता प्रदान करेंगे।"

आकाश काले बादलों से भरा था। हरे भरे पेड़ पौधों से आसाम की धरती सँवरी थी। ऊँची पवन श्रेणियों की ओर जाती हुई टेढ़ी मेढ़ी सड़क पर विनोबा हमारा हाथ पकड़कर लम्बे लम्बे डग भर रहे थे। हमें ऐसा लगा, मानो विनोबा हमारा हाथ पकड़कर हमें यात्रा करा रहे हैं। सचाई भी तो यही थी। वे हमें सीख दे रहे थे। वे स्वयं सवालों को उठाते थे और स्वयं ही उनका समाधान भी करते थे। एकाएक उन्होंने हमारे कन्धे पर हाथ रखा। दो मिनट मौन रहे। फिर प्यार से हमारी तरफ देखा। हम कुछ समझ नहीं। इतना जरूर लगा कि हमारी बात चीत करीब करीब समाप्त हो गयी है, लेकिन कोई अन्तिम सीख विनोबा हमें देना चाहते हैं।

"सारी जनता शान्ति चाहती है और तुम लोग शान्ति का 'मिशन' लेकर जा रहे हो, तो जनता पर विश्वास रखकर जाओ, वह तुम्हें कष्ट में नहीं पड़ने देगी। देशों की सीमाएँ धरती और जमीन के बीच बने हैं, आसमान के दिलों में कहीं कोई सीमा या भेद नहीं।" एक क्षण रुककर विनोबा ने अपना विचार स्पष्ट किया "जनता के साथ सीधा सम्पर्क होने में पैसा बाधक होता है। मैं तो पूरा सर्वोदय आन्दोलन जनाधार पर चलाने का विचार रखता हूँ। तुम्हारी पदयात्रा के लिए भी मैं यही मार्ग सुझाता हूँ। मुझे जनता पर पूर्ण विश्वास है। तुम लोग एक प्रयोग के तौर पर इसे आजमाओ। जाओ, तुम्हारी यात्रा के लिए मेरा पूरा आशीर्वाद है।"

खाना-पीना तो चल जायगा पर चिट्ठी पत्र के लिए क्या होगा? जूते टूट जायेंगे तो क्या होगा? कपड़े फट जायेंगे तो क्या होगा? रूस की भयंकर सर्दी से बचने के लिए गरम कपड़े कहाँ से आयेंगे? बाल बढ़ जायेंगे तो हजामत कैसे बनेगी? कहीं बीमार पड़ेंगे तो दवा का क्या होगा? और सब जाने दीजिये, पर साबुन तो प्रतिदिन चाहिए। विनोबा सन्त हैं, आदर्शवादी हैं, पर इन व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना तो हमें ही करना होगा न? पैसे के बिना इतनी लम्बी यात्रा कैसे मुमकिन है? इस तरह मन ही मन अनेक संकल्प विकल्प उत्पन्न होते रहे। फिर मस्तिष्क ने तर्क किया—आखिर यहाँ पर पैसे कहाँ से आयेंगे। मित्रों से ही तो एकत्र करेंगे। तो फिर क्या जिन देशों में हम जा रहे हैं, वहाँ के लोग हमारे मित्र नहीं, अमित्र हैं। यह 'तो' जहाँ भी आता है, बंटाधार कर देता है। कल आसमान फट जायगा 'तो' क्या होगा? कल मौत आ जायगी 'तो' क्या होगा? इस तरह सोचने से क्या कभी काम चलता है?



मस्तिष्क का यह तर्क प्रतिवाद हृदय की कमजोरियों पर छा गया। आसाम की पहाड़ियों में रुके हुए बादल फिर एक बार दिल्ली में गरज उठे। भयंकर गर्मी में तपी हुई दिल्ली की सड़कों पर पहली जून, १९६२ को वर्षा आरम्भ हुई। पुरवाई हवा के ठंडे झोंके अलसाये हुए शरीर में चेतना भरने लगे। जमना के किनारे चिरनिद्रा में सोये बापू की समाधि पर हम गये थे। विनोबा ने हमें अपना आशीर्वाद देने से पहले वर्षा और बादलों की साक्षी में जो सीख दी थी, उसकी याद दिलाने के लिए ही मानो बापू की समाधि पर भी वर्षा और बादल दोनों उपस्थित थे। हमें लगा, जैसे बापू चुपचाप हमें कह रहे हों कि "जनता बादलों की तरह उदार है और वर्षा की तरह सुखद शीतल!" विनोबा बापू! बापू विनोबा! दोनों ने मिलकर हमारे मन मस्तिष्क को साहस से भर दिया और हमने निर्णय किया—"हमारी यात्रा जनाधार का एक प्रयोग बने।

पैसे का आधार हम छोड़ते हैं। पूरी यात्रा में कहीं, कभी भी हम पैसा स्वीकार नहीं करेंगे।"

वह गुरुवार का दिन था। इसी दिन सायंकाल बापू ने सत्य और शांति की शोध में जीवन-बलिदान किया था। पहली जून '६२ को भी गुरुवार था। सायंकाल प्रार्थना के लिए राजघाट पर हम सब एकत्र हुए। प्रार्थना के बाद हमारी कांचन मुक्त पदयात्रा प्रारम्भ हो गयी। हम अपने पथ पर चल पड़े।

हमारी यात्रा में पैसे ग्रहण करने का आग्रह जगह जगह होता रहा। पाकिस्तान का हमारा पहला पड़ाव था लाहौर में। वहाँ कोई भी व्यक्ति हमारे लिए परिचित नहीं था। वहाँ भी हम एक युवक मेहमान मिले। उन्होंने हमारी सारी व्यवस्था की और चलते समय जबर्दस्ती हमारी जेब में पाकिस्तानी सिक्के रख दिये। ये थे श्री गुलाम यसीन, जिन्हें किसी तरह समझा बुझाकर हमने रुपये वापस किये। पाकिस्तान के बाद अफगानिस्तान पहुँचे। जलालाबाद में दैनिक 'निग्रहार' के सम्पादक श्री रहमान ने कहा "शांति-यात्रा के लिए हमारी कुछ तो मदद स्वीकार कीजिये ही", और अफगानी सिक्के पेश कर दिये। काबुल में भाई अमृतलाल की दुकान पर हम बैठे थे। वे हमारी यात्रा की योजना से इतने प्रसन्न हुए कि भावुक बनकर उन्होंने दूकान के 'कैश बॉक्स' में से मुट्ठीभर अफगानी मुद्रा बिना देखे, बिना गिने निकालकर हमारे सामने रख दी। "मुझे सेवा का मौका दें।" उनकी दूकान से एक एक फाउंटेनपेन लेकर हमने उनसे क्षमा माँगी। "पैसा नहीं, आपका स्नेह ही हमारा शक्ति है"—कहकर हमने उन्हें समझाया। काबुल के हमारे मेजबान श्री रामलाल आनन्द और भारतीय दूतावास के प्रथम सचिव श्री मुरुगेशन का यह तर्क था कि "पैदल चलने का एक आग्रह ही पर्याप्त है। पैसा रखने में आपत्ति ही क्या है? साधारण तौर पर खर्च मत कीजिये, पर कभी वक्त बेवक्त के लिए कुछ मुद्रा पास में रख लीजिये।"

हम इरान म पहुँचे तो गोंरदे कानूस के एक बड़े जमींदार कप्टेन दुनरदर ने और तेहरान के व्यापारी श्री शोभानी न कहा "हम लोग एसे ही सैकड़ा हजारों खच करत रहते हैं। यदि आपकी यात्रा म हम कुछ मदद कर सकेंगे, तो हमारा चित्त बहुत प्रसन्न होगा।" पर हमने कहा "हम रातभर के आतिथ्य से ओर आपकी सहानुभूति स जो मदद मिलेगी, उसकी तुलना कितनी भी बड़ी धनराशि से नहा का जा सकती।" वाराणसी से श्री सिद्धराजजी ने तेहरान स्थित भारतीय राजदूत को लिखा कि "उन्ह पैसे की जरूरत हो ता आप मुहय्या कर, हम यहाँ से उसका प्रबध करेंगे।" तेहरान पहुँचते ही हमारे राजदूत ने हमारी पैसे की आवश्यकता के बारे में पूछा। पर, हमने बताया कि "दिल्ली से तहरान तक बिना पैसे के हम पहुँच गये। हमें इतना अच्छा लगा कि पैसे की जरूरत भूल ही गये हैं। यदि किसी वस्तु की हम आवश्यकता होगा, तो हम आपको बतायेंगे। पर पैसा हमें नहा चाहिए।"

इरान के बाद हम सोवियत सघ म पहुँचे, तो स्तालिन की जन्मभूमि गोरी म रात को बारह बजे एक टैक्सी ड्राइवर ने हमारा दरवाजा खट खटाया। उसने कहा "मन अखबारों म आपके बारे म पढ़ा है आज दिन म मने आपको सड़क पर देखा। आप कहाँ ठहरे है, इसका पता लगाते-लगाते अब यहाँ पहुँचा हूँ। ये १० रूबल (करीब १०० रुपये) आपको भेट करना चाहता हूँ।" अपनी भेट वापस ले जाने के लिए उसे बड़ी कठिनाई से हम राजी कर पाये। सोवियत शान्ति परिषद् के प्रतिनिधि एलेक्जेण्डर इवानोविच पान्तीन ने सुखुमी नगर म जाकर कहा "हम आश्चर्य होता है कि आप कैसे बिना पैसे के दिल्ली स यहाँ तक पहुँच गये! य लीजिये ४० रूबल (करीब ४०० रुपये)। कहा भी जरूरत पड़न पर इस्तेमाल कीजिये। सकोच का बात नहा। आप हमार अतिथि है और अतिथि को कष्ट होने स हम बहुत कष्ट होता है।" उन्हे किसी तरह समझाया कि "कष्ट पैसे रखने स होता है, न रखने स नहीं।" एस कितने ही प्रसग यूरोप व अमरिका म भी आये, जब हमारे अनजान

मित्रों ने जाने पहचाने मित्रों की भाँति ही हम प्यार किया, अपनत्व दिया और हर प्रकार की मदद करने के लिए उत्सुकता दिखायी।

मुसीबतें



बिना पैसे की यात्रा म कभी कभा कठिनाइयों का आना भी स्वाभाविक ही है। एक बार जब महीनेभर से भी अधिक समय तक हम भारत के लिए एक भी चिट्ठी नहीं लिख सके, तो तेहरान के दूतावास में तार और चिट्ठियों के ढेर लग गये—हम कहाँ खो गये, इसका पता लगाने के लिए। कहा ईरान के भयकर भूकम्प की चपेट म तो नहीं आ गये, इस सन्देह ने मित्रों और परिवारवालों को चिन्ता म डाल दिया। तीन महीने तक एक बार हजामत न बनवा पाये, तो तेहरान के एक मित्र ने कहा "क्या अणु अस्त्रों पर प्रतिबन्ध न लगने तक बाल कटवाने की कसम खा ली है!" एक बार तो गाँवों मे जगह न मिलने पर सामने के होटल म इसीलिए नहीं ठहरे कि जेब खाली थी।

इसी तरह लगातार तीस घटे तक भोजन न मिलने पर भी इसीलिए चलते हो रहे कि होटल में जाकर खाने के बाद दिल कहाँ से चुकाया जायगा? गरीब किसान-परिवारों में बिना दूध चीनी की चाय और सूखा रोटी खाकर थके हुए शरीर को निद्रादेवी की शरण म इसीलिए सौप देते थे कि अच्छे और पौष्टिक भोजन के लिए पैसे की शरण म जाना हमें स्वीकार नहीं था। परन्तु ऐसे कठिन अवसरों म भी मन का एक सन्तोष मिलता था, तृप्ति मिलती थी और इसीलिए यात्रा के प्रति कभी अनुत्साह पैदा नहीं हुआ। सच तो यह है कि ऐसे कष्ट प्रसग आनन्द-प्रद प्रसगों की तुलना म नगण्य है।

सबसे दिलचस्प बात यह है कि हम अपनी आवश्यकताएँ कैसे पूरी करते थे? जैसे, कपड़ की आवश्यकता को लें। काबुल म हम भारत से श्री हरिरामजी चोपड़ा और श्री सोमभाई ने अफगानिस्तान की भयंकर सर्दी

लायक कपड़े भेज दिये। सिर पर टोपी और पैरों में जूतों की व्यवस्था काबुल में हमारे मेजबान श्री रामलाल आनन्द ने की और इस तरह तेहरान तक हम कोई दिक्कत नहीं हुई। वहाँ काबुल के जूते तेहरान तक नहीं पहुँच सके। बंदरशहर में श्री जयराम सिधानी ने हमारे टूटे जूते देख कर न जाने मन ही मन क्या सोचा। वे उठे, हमसे कुछ कहे बिना चल दिये। थोड़ी देर में हमने देखा कि वे एक जोड़ी जूते लिये चले आ रहे हैं। हमारे आश्रय का ठिकाना न रहा। तेहरान के बाद हम रूस और रूसी सर्दी के मुँह में जाना था। तेहरान के भारतीय व्यापारी श्री मक्खन सिंहजी ने लगभग पाँच सौ रुपया खर्च करके 'स्लीपिंग बैग', स्वेटर, जूते और कोट का प्रबन्ध किया। वे कहने लगे "हम खुद आपके साथ चल नहीं सकते, इसी तरह कुछ मदद करके हम आपके 'मिशन' में साथ दे सकते हैं।" तेहरानवाले जूते जुल्फा तक काफी घिस गये तो जुल्फा नगर पालिका के अध्यक्ष ने जूतों की मरम्मत करवायी। सोवियत संघ में पहुँचे। आरमीनियन शान्ति-परिषद् की मन्त्रिणी ने हमारे लिए ऐसी टोपियाँ भेज दीं, जिन्हें पहनने पर रूसी भी सर्दी का असर नहीं हो सकता। आँख, नाक और मुँह को छोड़कर गले तक पूरा ढाँक सके, ऐसी वे टोपियाँ थी। मास्को में हम पहुँचे तो लखनऊ से श्री कपिलभाई द्वारा भेजा हुआ और बंगलोर से डाक्टर नटराजन द्वारा भेजा हुआ गरम कपड़ों का पार्सल हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। सोवियत शान्ति परिषद् ने ओवरकोट भेंट किया। पारिस में राधाकृष्णजी बजाज द्वारा वर्धा से भेजे हुए जूते और जापान में सुशीलकुमारजी द्वारा रायपुर से भेजे हुए कपड़े भी इसी तरह सहायक बने।

ब्रिटेन से अमरिका तक हमें ब्रिटेन के शान्तिवादी लोगों ने जहाज से भेजा, अमरिका से जापान तक अमरिका के पैसिफिस्ट लोगों ने हवाई जहाज से भेजा और जापान से भारत तक जापान के शान्तिवादियों ने जहाज में भेजा। इस तरह निर्विघ्न रूप से सारी व्यवस्था सहज होती गयी।

डाक भेजने की परेशानी अवश्य कभी-कभा सताती थी। अक्सर तो हम अपने मेजवान को ही इसके लिए पूछते थे। यदि वैसी अनुकूलता न हो तो चिट्ठी लिखकर जेब म रख लेते और सडक पर चलते हुए, प्राय कोइ न कोइ कारवाला हमें 'लिफ्ट' देने के लिए या हमारे बारे में कुछ अखबारों में पढा होने के कारण कुशल क्षेम पूछने क लिए अपनी कार रोकता, तो उसे हम टिकट लगाकर चिट्ठी भेज देने का काम साप देते थे। टाब्रोज म तो हम बड़े डाकघर के 'डाइरेक्टर' के पास गये और १० १२ 'एरोग्राम' ले लिये। इस तरह हम कोइ न कोइ तरीका निकाल ही लेते थे। किसी भी शहर में जब किसीके घर ठहरते, तो उनस साबुन, डाक टिकट आदि की छोटी मोटी जरूरतें बहुत आसानी स पूरी कर लेते थे। रूस में एक जगह दाढी बनाने के लिए हमने अपने मेजबान से ब्लेड पूछा। उनके पास ब्लेड नहा, उस्तरा था, जिससे दाढा बनाने की हम आदत नहीं। हमारे मेजबान ने खुद अपने हाथ से ही हमारी दाढी बना दी। कैसा दिलचस्प प्रसग था यह रूस क एक छोटे-से गॉव में।

हमारे पास पैसा नहा है, यह जानकर तो लोग हमारी और भी ज्यादा चिन्ता करते थे। हमें अक्सर यह अनुभव ही नहीं होता था कि हमारे पास पैसा नहा है।

साथ का सामान



हमारी यात्रा की पूरतैयारी का ज्यादा सम्बन्ध बाहरी प्रश्नों म नहा था। सबसे बडी बात एक ही थी कि इस यात्रा के लिए हमारे मन म एक तडप थी और एक आकर्षण था। वह तडप इतनी तीव्र थी कि उसके सामने सभी प्रश्न या तो गौण होते चले गये या अपने आप सुलझते चले गये। हम चारों ओर स इतनी शक्ति और स्फूर्ति मिली कि यात्रा का श्रीगणेश कब हो, इसके इन्तजार में हम बेचैन रहने लगे। कइ मित्रों ने इस लम्बी पदयात्रा म आनेवाले कष्टों, मुसीबतों और तकलीफों की

ओर हमारा ध्यान खींचा। पर हमने यही सोचा कि तकलीफ न आय तो यात्रा का मजा ही क्या? इसलिए हर मुसीबत का, हर कष्ट का हम सामना करेंगे—यही हमारा निश्चय था। कुछ बुजुर्गों को हमारे 'मिशन' की सफलता में सन्देह भी था। पर हमने कहा कि कोई भी काम करने से पहले ही सफलता असफलता के लिए जो चिन्ता करता रहता है, वह कभी कोई काम कर ही नहीं सकता। हमारा साध्य अच्छा है और उसके लिए हमने जो साधन अपनाया है, वह भी अच्छा है, तो फिर उस साधन में जुट जाना ही हमारा काम है।

यात्रा में हमें जो भी आवश्यक सामान चाहिए था, वह हमने अपने साथ रखा। हम अपनी पीठ पर एक थैले में करीब १० किलो वजन रखते थे। इसमें वे सभी चीजें आ जाती थीं, जिनकी हमें नित्य जरूरत पड़ती है। किसी भी गाँव में दो समय भोजन के सिवा हम कुछ भी माँगना न पड़े, इस तरह से हमने सामान का प्रबन्ध किया। हमारे पास निम्नलिखित सामान रहता था

दो चादर	डॉट पेन	चाकू
तीन पाजामे	पुस्तक दो	रस्सी
तीन कुरते	लेटरपैड	तरपाल
रूमाल	पीठ का थैला	आइडक्स
दो बनियान	दो बगल थैले	टिंचराइडिन
दो अंडरवियर	पानी की कुप्पी	मैरिटोन
तौलिया	लोटा और मग	ग्लूकोज
रेनकोट टोपी	आइना, कंघा, तेल	पचिश की दवा
बूट-जूता	दंत मंजन	रेडीमेड चाय
चप्पल जूता	साबुन	घड़ी
माचिस	रेजर, ब्लेड और ब्रश	टार्च और कपड़े का
कैमरा	दो चम्मच	सादा जोड़
चश्मा	पिन कुशन	बन्द एलबम और नक्शा

दो फाइल	पेन इक	शब्दकोश
डायरी	कैंची	'रूसी भाषा शिक्षक'
फाउटेन पेन	नेल कटर	पुस्तक

पासपोर्ट !



पासपोर्ट के लिए हमने बहुत पहले ही मद्रास सेन्टर से आवेदन किया था। किन्तु मद्रास सेन्टर के पासपोर्ट अधिकारी ने 'राजनीतिक मामला' कहकर हमारा आवेदन-पत्र विदेश मन्त्रालय, दिल्ली को भेज दिया। सबसे पहला प्रश्न था, १० हजार रुपये की गारंटी का। इसे हम कैसे हल करते? हमारी जिम्मेदारी कौन उठाता? सुरक्षा की गारंटी कौन देता? आखिर कलकत्ता के मेरे एक एडवोकेट मित्र मागीलाल जैन ने यह जिम्मेदारी ली। इस तरह सभी औपचारिक कार्रवाइयाँ पूरी हो जाने के बावजूद हम समय पर पासपोर्ट नहीं मिल सका। मई महीने की चिलचिलाती धूप और लू में हमने विदेश मन्त्रालय के कितने ही चक्कर लगाये। परन्तु लाल-फीताशाही में फँसे हुए हमारे कागजात मुक्ति नहीं पा सके। यद्यपि विश्व नागरिक होने के नाते हम पासपोर्ट जैसी चीज पर कोई विश्वास नहीं है, फिर भी हम सरकार तक को सन्तुष्ट करने के लिए पासपोर्ट माँग रहे थे। जब हम अपने प्रयत्न में असफल रहे और गाधी समाधि, नया दिल्ली से अपनी पदयात्रा पर चलने लगे, तब हमारे हाथ खाली थे। दूसरे ही दिन एक दैनिक अखबार ने यह समाचार छापा कि "दो भारतीय शान्ति यात्री दिल्ली से अमेरिका तक की पदयात्रा पर निकले हैं, किन्तु उनकी जेब में न तो पैसा है और न हाथ में पासपोर्ट।"

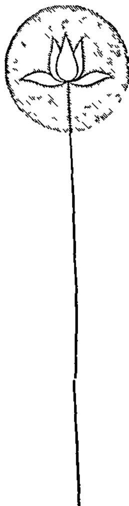
इस खबर ने कुछ हलचल मचायी। लोकसभा के एक सदस्य को यह प्रश्न पूछने की प्रेरणा मिली कि जब हमारे मन्त्रिगण तरह-तरह के लोगों को, व्यापारियों को, अपने सम्बन्धियों को नये नये कारण ढूँढकर विदेश यात्रा पर भेज देते हैं, तो इन शान्ति-यात्रियों को पासपोर्ट देने में

क्या बाधा हो सकती है ? वास्तव में नीति सम्बन्धी तो कोई बाधा थी भी नहीं। दफ्तरों में चलनेवाली शिथिलता और भ्रष्टाचार ही इसके पीछे कारण हो सकता था। पर हमने यही तय किया कि जो भी हो, हम वापस नहीं आयेंगे और अपने कार्यक्रम के अनुसार आगे बढ़ते जायेंगे। अपने कार्यक्रम में फेर बदल न करने की हमारी इच्छा के कारण ही हमने राष्ट्रपति राधाकृष्णन् से मिलने का विचार भी रद्द कर दिया। कारण, राष्ट्रपति ने हमें ३ जून को मिलने का समय दिया था और हम पहली जून को ही दिल्ली से चल पड़ने का निश्चय कर चुके थे। पासपोर्ट के लिए दिल्ली में पहली जून के बाद रुकना हमने उचित नहीं समझा और अपनी यात्रा शुरू कर दी। जब हम पाकिस्तान की सरहद के पास पहुँच गये थे, तब दिल्ली से एक भाई आये और बोले "शांति-यात्रियो, यह लीजिये आपका पासपोर्ट !"

पाकिस्तान की सरहद तक हमने ३२ दिन यात्रा की।

पंजाब का हमारा कार्यक्रम अत्यन्त उत्साहवर्धक रहा। पानीपत, अम्बाला, राजपुरा, लुधियाना, आदमपुर, जालन्धर और अमृतसर का सम्पूर्ण कार्यक्रम इतना सफल और स्फूर्तिदायक रहा कि अब भी वह सारी यात्रा चलचित्र की भाँति नजरों के सामने है। सभी जगह बड़ी बड़ी आम सभाएँ, विद्यार्थियों और युवकों की सभाएँ, बुद्धिजीवियों की सभाएँ हुईं। दिल्ली से रवाना होते समय हम इसका अन्दाज भी नहीं था कि पंजाब में हमारा कार्यक्रम इतना सफल रहेगा।

हमने देखा कि सब जगह आणविक हथियारों के खिलाफ जनता का हृदय तैयार है। पर उसे यह समझ में नहीं आ रहा है कि किन तरीकों से इसका विरोध किया जाय। 



पड़ोसी देश पाकिस्तान में